अप्पा सो परमप्पा

(आत्मा ही परमात्मा है)

—डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल

(प्रसिद्ध विद्वान एवं ओजस्वी वक्ता)

(टोडरमल स्मारक भवन

ए-४, बापू नगर, जयपुर ३०२०१५)

जैनदर्शन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह कहता है कि सभी आत्मा स्वयं परमात्मा हैं। स्वभाव से तो सभी परमात्मा हैं ही, यदि अपने को जाने, पहचाने और अपने में ही जम जायँ, रम जायँ तो प्रगटरूप से पर्याय में भी परमात्मा बन सकते हैं।

जब यह कहा जाता है तो लोगों के हृदय में एक प्रश्न सहज ही उत्पन्न होता है कि जब 'सभी परमात्मा हैं, तो परमात्मा बन सकते हैं'—इसका क्या अर्थ है? और यदि 'परमात्मा बन सकते हैं'—यह बात सही है तो फिर 'परमात्मा हैं'—इसका कोई अर्थ नहीं रह सकता है, क्योंकि बन सकना और होना—दोनों एक साथ संभव नहीं हैं।

भाई, इसमें असंभव तो कुछ भी नहीं है, पर ऊपर से देखने पर भगवान होने और हो सकने में कुछ विरोधाभास अवश्य प्रतीत होता है, किन्तु गहराई से विचार करने पर सब बात एकदम स्पष्ट हो जाती है।

एक सेठ था और था उसका पाँच वर्ष का इकलौता बेटा। बस दो ही प्राणी थे। जब सेठ का अन्तिम समय आ गया तो उसे चिन्ता हुई कि यह छोटा-सा बालक इतनी विशाल सम्पत्ति को कैसे संभालेगा? अतः उसने लगभग सभी सम्पत्ति बेचकर एक करोड़ रुपये इकट्ठे किये और अपने बालक के नाम पर बैंक में बीस वर्ष के लिए सावधि जमायोजना (फिक्स्ड डिपाजिट) के अन्तर्गत जमा करा दिये। सेठ ने इस रहस्य को गुप्त ही रखा, यहाँ तक कि अपने पुत्र को भी नहीं बताया, मात्र एक अत्यन्त घनिष्ठ मित्र को इस अनुरोध के साथ बताया कि वह उसके पुत्र को यह बात तब तक न बताये, जब तक कि वह पच्चीस वर्ष का न हो जावे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पिता के अचानक स्वर्गवास के बाद वह बालक अनाथ हो गया और कुछ दिनों तक तो बची-खुची सम्पत्ति से आजीविका चलाता रहा, अन्त में रिक्शा चलाकर पेट भरने लगा। चौराहे पर खड़े होकर जोर-जोर से आवाज लगाता कि दो रुपये में रेलवे स्टेशन, दो रुपये में रेलवे स्टेशन,.....।

अब मैं आप सबसे एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ कि वह रिक्शा चलाने वाला बालक करोड़पति है या नहीं ?

क्या कहा ?

नहीं।

क्यों ?

क्योंकि करोड़पति रिक्शा नहीं चलाते और रिक्शा चलाने वाले बालक करोड़पति नहीं हुआ करते।

अरे भाई, जब वह व्यक्ति ही करोड़पति नहीं होगा, जिसके करोड़ रुपये बैंक में जमा हैं तो फिर और कौन करोड़पति होगा ? पर भाई, बात यह है कि उसके करोड़पति होने पर भी हमारा मन उसे करोड़पति मानने को तैयार नहीं होता; क्योंकि रिक्शावाला करोड़पति हो—यह बात हमारे चित्त को सहज स्वीकार नहीं होती। आज तक हमने जिन्हें करोड़पति माना है, उनमें से किसी को रिक्का चलाते नहीं देखा और करोड़पति रिक्शा चलाये—यह हमें अच्छा भी नहीं लगता; क्योंकि हमारा मन ही कुछ इस प्रकार का बन गया है।

'कौन करोड़पति है और कौन नहीं है ?'—यह जानने के लिए आज तक कोई किसी की तिजोरी के नोट गिनने तो गया नहीं। यदि जायेगा भी तो बतायेगा कौन ? बस, बाहरी ताम-झाम देखकर ही हम किसी को करोड़पति मान लेते हैं। दस-पाँच नौकर-चाकर, मुनीम-गुमाश्ते और बंगला, मोटरकार, कल-कारखाने देखकर ही हम किसी को करोड़पति मान लेते हैं, पर यह कोई नहीं जानता कि जिसे हम करोड़-पति समझ रहे हैं, हो सकता है वह करोड़ों का कर्जदार हो। बैंक से करोड़ों रुपये उधार लेकर कल-कारखाने चल निकलते हैं और बाहरी ठाठ-बाट देखकर अन्य लोग भी सेठजी के पास पैसे जमा कराने लगते हैं। इस प्रकार गरीबों, विधवाओं, ब्रह्मचारियों द्वारा उनके पास जमा कराये गये करोड़ों रुपयों से निर्मित बाह्य ठाठ-बाट से हम उसे करोड़पति मान लेते हैं।

इस संभावना से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि जिसे हम करोड़पति साहूकार मान रहे हैं; वह लोगों के करोड़ों रुपये पचाकर दिवाला निकालने की योजना बना रहा हो।

ठीक यही बात सभी आत्माओं को परमात्मा मानने के सन्दर्भ में भी है। हमारा मन इन चलते-फिरते, खाते-पीते, रोते-गाते चेतन आत्माओं को परमात्मा मानने को तैयार नहीं होता। हमारा मन कहता है कि यदि हम भगवान होते तो फिर दर-दर की ठोकर क्यों खाते फिरते ? अज्ञानांधकार में डूबा हमारा अन्तर् बोलता है कि हम भगवान नहीं हैं, हम तो दीन-हीन प्राणी हैं; क्योंकि भगवान दीन-हीन नहीं होते और दीन-हीन भगवान नहीं होते।

अब तक हमने भगवान के नाम पर मन्दिरों में विराजमान उन प्रतिमाओं के ही भगवान के रूप में दर्शन किये हैं, जिनके सामने हजारों लोग मस्तक टेकते हैं, भक्ति करते हैं, पूजा करते हैं। यही कारण है कि हमारा मन डाँटे-फटकारे जाने वाले जनसामान्य को भगवान मानने को तैयार नहीं होता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हम सोचते हैं कि ये भी कोई भगवान हो सकते हैं क्या ? भगवान तो वे हैं, जिनकी पूजा की जाती है, भक्ति की जाती है। सच बात तो यह है कि हमारा मन ही कुछ ऐसा बन गया है कि उसे यह स्वीकार नहीं कि कोई दीन-हीन जन भगवान बन जाये। अपने आराध्य को दीन-हीन दशा में देखना भी हमें अच्छा नहीं लगता।

भाई, भगवान भी दो तरह के होते हैं—एक तो वे अरहंत और सिद्ध परमात्मा जिनकी मूर्तियाँ मन्दिरों में विराजमान हैं और उन मूर्तियों के माध्यम से हम उन मूर्तिमान परमात्मा की उपासना करते हैं, पूजन-भक्ति करते हैं, जिस पथ पर वे चले, उस पथ पर चलने का संकल्प करते हैं, भावना भाते हैं। ये अरहंत और सिद्ध कार्यपरमात्मा कहलाते हैं।

दूसरे देहदेवल में विराजमान निज-भगवान आत्मा भी परमात्मा हैं, भगवान हैं, इन्हें कारण-परमात्मा कहा जाता है।

जो भगवान मूर्तियों के रूप में मन्दिरों में विराजमान हैं, वे हमारे पूज्य हैं, परमपूज्य हैं, अतः हम उनकी पूजा करते हैं, भक्ति करते हैं, गुणानुवाद करते हैं; किन्तु देहदेवल में विराजमान निज-भगवान आत्मा श्रद्धेय है ध्येय है, परमज्ञेय है, अतः निज भगवान को जानना, पहचानना और उसका ध्यान करना ही उसकी आराधना है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की उत्पत्ति इस निज भगवान आत्मा के आश्रय से ही होती है, क्योंकि निश्चय से निज-भगवान आत्मा को निज जानना ही सम्यग्ज्ञान है, उसे ही निज मानना, 'यही मैं हूँ'—ऐसी प्रतीति होना सम्यग्दर्शन है और उसका ही ध्यान करना, उसी में जम जाना, रम जाना, लीन हो जाना सम्यक्चारित्र है।

अष्टद्रव्य से पूजन मन्दिर में विराजमान 'परभगवान' की की जाती है और ध्यान शरीररूपी मन्दिर में विराजमान 'निजभगवान' आत्मा का किया जाता है। यदि कोई व्यक्ति निज आत्मा को भगवान मानकर मन्दिर में विराजमान भगवान के समान स्वयं की भी अष्ट द्रव्य से पूजन करने लगे तो उसे व्यवहार-विहीन ही माना जायेगा, वह व्यवहारकुशल नहीं, अपितु व्यवहारमूढ़ ही है।

इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति आत्मोपलब्धि के लिए ध्यान भी मन्दिर में विराजमान भगवान का ही करता रहे तो उसे भी विकल्पों की ही उत्पत्ति होती रहेगी, निर्विकल्प आत्मानुभूति कभी नहीं होगी; क्योंकि निर्विकल्प आत्मानुभूति निजभगवान आत्मा के आश्रय से ही होती है। निर्विकल्प आत्मानुभूति के बिना सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की उत्पत्ति भी नहीं होगी। इस प्रकार उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकतारूप मोक्ष मार्ग का आरम्भ ही नहीं होगा।

जिस प्रकार वह रिक्शा वाला बालक रिक्शा चलाते हुए भी करोड़पति है, उसी प्रकार दीन-हीन हालत में होने पर भी हम सभी स्वभाव से ज्ञानानन्द स्वभावी भगवान हैं, कारण-परमात्मा हैं—यह जानना-मानना उचित ही है।

इस सन्दर्भ में मैं आपसे एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ कि भारत में अभी किसका राज है ?

क्या कहा, कांग्रेस का ?

नहीं भाई ! यह ठीक नहीं है, कांग्रेस तो एक पार्टी है, भारत में राज तो जनता-जर्नादन का है, क्योंकि जनता जिसे चुनती है, वही भारत का शासन चलाता है; अतः राज जनता-जर्नादन का ही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्त सन्दर्भ में जब हम जनता को जर्नादन (भगवान) कहते हैं तो कोई नहीं कहता कि जनता तो जनता है, वह जर्नादन अर्थात् भगवान कैसे हो सकती है ? पर जब तात्त्विक चर्चा में यह कहा जाता है कि हम सभी भगवान हैं तो हमारे चित्त में अनेक प्रकार की शंकाएँ-आशंकाएँ खड़ी हो जाती हैं, पर भाई, गहराई से विचार करें तो स्वभाव से तो प्रत्येक आत्मा परमात्मा ही है—इसमें शंका-आशंका को कोई स्थान नहीं है।

प्रश्न—यदि यह बात है तो फिर ये ज्ञानानन्दस्वभावी भगवान आत्मा वर्तमान में अनन्त दुःखी क्यों दिखाई दे रहे हैं ?

उत्तर—अरे भाई, ये सब भूले हुए भगवान हैं, स्वयं को—स्वयं की सामर्थ्य को भूल गये हैं, इसी कारण सुखस्वभावी होकर भी अनन्तदुःखी हो रहे हैं। इनके दुःख का मूल कारण स्वयं को नहीं जानना, नहीं पहचानना ही है। जब ये स्वयं को जानेंगे, पहचानेंगे एवं स्वयं में ही जम जायेंगे, रम जायेंगे, तब स्वयं ही अनन्तसुखी भी हो जावेंगे।

जिस प्रकार वह रिक्शा चलाने वाला बालक करोड़पति होने पर भी यह नहीं जानता है कि 'मैं स्वयं करोड़पति हूँ'—इस कारण दरिद्रता का दुःख भोग रहा है। यदि उसे यह पता चल जाये कि मैं तो करोड़पति हूँ, मेरे करोड़ रुपये बैंक में जमा हैं तो उसका जीवन ही परिवर्तित हो जावेगा। उसी प्रकार जब तक यह आत्मा स्वयं के परमात्मस्वरूप को नहीं जानता—पहचानता है, तभी तक अनन्त-दुःखी है, जब यह आत्मा अपने परमात्मस्वरूप को भलीभाँति जान लेगा, पहचान लेगा तो इसके दुःख दूर होने में भी देर न लगेगी।

कंगाल के पास करोड़ों का हीरा हो, पर वह उसे काँच का टुकड़ा समझता हो या चमकदार पत्थर मानता हो तो उसकी दरिद्रता जाने वाली नहीं है, पर यदि वह उसकी सही कीमत जान ले तो दरिद्रता एक क्षण भी उसके पास टिक नहीं सकती, उसे विदा होना ही होगा। इसी प्रकार यह आत्मा स्वयं भगवान होने पर भी यह नहीं जानता कि मैं स्वयं भगवान हूँ। यही कारण है कि यह अनन्त काल से अनन्त दुःख उठा रहा है। जिस दिन यह आत्मा यह जान लेगा कि मैं स्वयं भगवान ही हूँ, उस दिन उसके दुःख दूर होते देर न लगेगी।

इससे यह बात सहज सिद्ध होती है कि होने से भी अधिक महत्व जानकारी होने का है, ज्ञान होने का है। होने से क्या होता है ? होने को तो यह आत्मा अनादि से ज्ञानानन्दस्वभावी भगवान आत्मा ही है, पर इस बात की जानकारी न होने से, ज्ञान न होने से ज्ञानानन्दस्वभावी भगवान होने का कोई लाभ इसे प्राप्त नहीं हो रहा है। होने को तो वह रिक्शा चलाने वाला बालक भी गर्भश्रीमन्त है, जन्म से ही करोड़पति है, पर पता न होने से दो रोटियों की खातिर उसे रिक्शा चलाना पड़ रहा है। यही कारण है कि जिनागम में ज्ञान के गीत दिल खोलकर गाये हैं। कहा गया है कि—

"ज्ञान समान न आन जगत में सुख कौ कारण।
इह परमामृत जन्म-जरा-मृतु रोग निवारण।।[1]

इस जगत में ज्ञान के समान अन्य कोई भी पदार्थ सुख देने वाला नहीं है। यह ज्ञान जन्म, जरा और मृत्यु रूपी रोग को दूर करने के लिये परम-अमृत है, सर्वोत्कृष्ट औषधि है।"

---

१. पंडित दौलतराम : छहढाला, चतुर्थ ढाल, छन्द ४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और भी देखिये—

"जे पूरब शिव गये जाहिं अरु आगे जैहैं।
सो सब महिमा ज्ञानतनी मुनिनाथ कहै हैं ॥[1]

आज तक जितने भी जीव अनन्त सुखी हुए हैं अर्थात् मोक्ष गये हैं या जा रहे हैं अथवा भविष्य में जावेंगे, वह सब ज्ञान का ही प्रताप है—ऐसा मुनियों के नाथ जिनेन्द्र भगवान कहते हैं।

सम्यग्ज्ञान की तो अनन्त महिमा है ही, पर सम्यग्दर्शन की महिमा जिनागम में उससे भी अधिक बताई गई है, गाई गई है।

क्यों और कैसे ?

मान लो रिक्शा चलाने वाला वह करोड़पति बालक अब २५ वर्ष का युवक हो गया है। उसके नाम से जमा करोड़ रुपयों की अवधि समाप्त हो गई है, फिर भी कोई व्यक्ति बैंक से रुपये लेने नहीं आया। अतः बैंक ने समाचार-पत्रों में सूचना प्रकाशित कराई कि अमुक व्यक्ति के इतने रुपये बैंक में जमा हैं, वह एक माह के भीतर नहीं आया तो लावारिस समझकर रुपये सरकारी खजाने में जमा करा दिये जावेंगे।

उस समाचार को उस नवयुवक ने भी पढ़ा और उसका हृदय प्रफुल्लित हो उठा, पर उसकी वह प्रसन्नता क्षणिक साबित हुई, क्योंकि अगले ही क्षण उसके हृदय में संशय के बीज अंकुरित हो गये। वह सोचने लगा कि मेरे नाम इतने रुपये बैंक में कैसे हो सकते हैं ? मैंने तो कभी जमा कराये ही नहीं। मेरा तो किसी बैंक में कोई खाता भी नहीं है। फिर भी उसने वह समाचार दुबारा बारीकी से पढ़ा तो पाया कि वह नाम तो उसी का है, पिता के नाम के स्थान पर भी उसी के पिता का नाम अंकित है, कुछ आशा जागृत हुई, किन्तु अगले क्षण ही उसे विचार आया कि हो सकता है, इसी नाम का कोई दूसरा व्यक्ति हो और सहज संयोग से ही उसके पिता का नाम भी यही हो। इस प्रकार वह फिर शंकाशील हो उठा।

इस प्रकार जानकर भी उसे प्रतीति नहीं हुई, इस बात का विश्वास जागृत नहीं हुआ कि ये रुपये मेरे ही हैं। अतः जान लेने पर भी कोई लाभ नहीं हुआ। इससे सिद्ध होता है कि प्रतीति बिना, विश्वास बिना जान लेने मात्र से भी कोई लाभ नहीं होता। अतः ज्ञान से भी अधिक महत्व श्रद्धान का है, विश्वास का है, प्रतीति का है।

इसी प्रकार शास्त्रों में पढ़कर हम सब यह जान तो लेते हैं कि आत्मा ही परमात्मा है (अप्पा सो परमप्पा), पर अन्तर् में यह विश्वास जागृत नहीं होता कि मैं स्वयं ही परमात्मस्वरूप हूँ, परमात्मा हूँ, भगवान हूँ। यही कारण है कि यह बात जान लेने पर भी कि मैं स्वयं परमात्मा हूँ, सम्यक्श्रद्धान बिना दुःख का अन्त नहीं होता, चतुर्गतिभ्रमण समाप्त नहीं होता, सच्चे सुख की प्राप्ति नहीं होती।

समाचार-पत्र में उक्त समाचार पढ़कर वह युवक अपने साथियों को भी बताता है। उन्हें समाचार दिखाकर कहता है कि 'देखो, मैं करोड़पति हूँ। अब तुम मुझे गरीब रिक्शेवाला नहीं समझना।'

---

१. पंडित दौलतराम : छहढाला, चतुर्थ ढाल, छन्द ८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार कहकर वह अपना और अपने साथियों का मनोरंजन करता है, एक प्रकार से स्वयं अपनी हँसी उड़ाता है। इसी प्रकार शास्त्रों में से पढ़-पढ़कर हम स्वयं अपने साथियों को भी सुनाते हैं। कहते हैं—'देखो, हम सभी स्वयं भगवान हैं, दीन-हीन मनुष्य नहीं।' इस प्रकार की आध्यात्मिक चर्चाओं द्वारा हम स्वयं का और समाज का मनोरंजन तो करते हैं, पर सम्यक्श्रद्धान के अभाव में भगवान होने का सही लाभ प्राप्त नहीं होता, *आत्मानुभूति नहीं होती, सच्चे सुख की प्राप्ति नहीं होती, आकुलता समाप्त नहीं होती।*

इस प्रकार अज्ञानीजनों की आध्यात्मिक चर्चा भी आत्मानुभूति के बिना, सम्यग्ज्ञान के बिना, सम्यक्श्रद्धान के बिना बौद्धिक व्यायाम बनकर रह जाती है।

समाचार-पत्रों में प्रकाशित हो जाने के उपरान्त भी जब कोई व्यक्ति पैसे लेने बैंक में नहीं आया तो बैंकवालों ने रेडियो स्टेशन से घोषणा कराई। रेडियो स्टेशन को भारत में आकाशवाणी कहते है। अतः आकाशवाणी हुई कि अमुक व्यक्ति के इतने रुपये बैंक में जमा हैं, वह एक माह के भीतर ले जावे, अन्यथा लावारिस समझकर सरकारी खजाने में जमा करा दिये जावेंगे।

आकाशवाणी की उस घोषणा को रिक्शे पर बैठे-बैठे उसने भी सुना, अपने साथियों को भी सुनाई, पर विश्वास के अभाव में कोई लाभ नहीं हुआ। इसी प्रकार अनेक प्रवक्ताओं से इस बात को सुनकर भी कि हम सभी स्वयं भगवान हैं, विश्वास के अभाव में बात वहीं की वहीं रही। जीवन भर जिनवाणी सुनकर भी, पढ़कर भी, आध्यात्मिक चर्चायें करके भी आत्मानुभूति से अछूते रह गये।

समाचार-पत्रों में प्रकाशित एवं आकाशवाणी से प्रसारित उक्त समाचार की ओर जब स्वर्गीय सेठजी के उन अभिन्न मित्र का ध्यान गया, जिन्हें उन्होंने मरते समय उक्त रहस्य की जानकारी दी थी, तो वे तत्काल उस युवक के पास पहुँचे और बोले—

"बेटा ! तुम रिक्शा क्यों चलाते हो ?"

उसने उत्तर दिया—"यदि रिक्शा न चलायें तो खायेंगे क्या ?"

उन्होंने समझाते हुए कहा—"भाई, तुम तो करोड़पति हो, तुम्हारे तो करोड़ों रुपये बैंक में जमा हैं।"

अत्यन्त गमगीन होते हुए युवक कहने लगा—

"चाचाजी, आपसे ऐसी आशा नहीं थी, सारी दुनिया तो हमारा मजाक उड़ा ही रही है, पर आप तो बुजुर्ग हैं, मेरे पिता के बराबर हैं, आप भी···· ।"

वह अपनी बात समाप्त ही न कर पाया था कि उसके माथे पर हाथ फेरते हुए अत्यन्त स्नेह से वे कहने लगे—

"नहीं भाई, मैं तेरी मजाक नहीं उड़ा रहा हूँ। तू सचमुच ही करोड़पति है। जो नाम समाचार-पत्रों में छप रहा है, वह तेरा ही नाम है।"

अत्यन्त विनयपूर्वक वह बोला—"ऐसी बात कहकर आप मेरे चित्त को व्यर्थ ही अशान्त न करें। मैं मेहनत-मजदूरी करके दो रोटियाँ पैदा करता हूँ और आराम से जिन्दगी बसर कर रहा हूँ। मेरी महत्वाकांक्षा को जगाकर आप मेरे चित्त को क्यों उद्वेलित कर रहे हैं। मैंने तो कभी कोई रुपये बैंक में जमा कराये ही नहीं। अतः मेरे रुपये बैंक में जमा कैसे हो सकते हैं ?"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्यन्त गद्गद् होते हुए वे कहने लगे —"भाई तुम्हें पैसे जमा कराने की क्या आवश्यकता थी ? तुम्हारे पिताजी स्वयं बीस वर्ष पहले तुम्हारे नाम एक करोड़ रुपये बैंक में जमा करा गये थे, जो अब ब्याज सहित तीन करोड़ हो गये होंगे। मरते समय यह बात वे मुझे बता गये थे।'

यह बात सुनकर वह एकदम उत्तेजित हो गया। थोड़ा-सा विश्वास उत्पन्न होते ही उसमें करोड़पतियों के लक्षण उभरने लगे। वह एकदम गर्म होते हुए बोला—"यदि यह बात सत्य है तो आपने अभी तक हमें क्यों नहीं बताया ?"

वे समझाते हुए कहने लगे—"उत्तेजित क्यों होते हो ? अब तो बता दिया। पीछे की जाने दो, अब आगे की सोचो।"

"पीछे की क्यों जाने दो ? हमारे करोड़ों रुपये बैंक में पड़े रहे और हम दो रोटियों के लिये मुँहताज हो गये। हम रिक्शा चलाते रहे और आप देखते रहे। यह कोई साधारण बात नहीं है, जो ऐसे ही छोड़ दी जावे, आपको इसका जवाब देना ही होगा।"

"तुम्हारे पिताजी मना कर गये थे।"

"आखिर क्यों ?"

"इसलिए कि बीस वर्ष पहले तुम्हें रुपये तो मिल नहीं सकते थे। पता चलने पर तुम रिक्शा भी न चला पाते और भूखों मर जाते।"

"पर उन्होंने ऐसा किया ही क्यों ?"

"इसलिए कि नाबालिगी की अवस्था में कहीं तुम यह सम्पत्ति बर्बाद न कर दो और जीवन भर के लिए कंगाल हो जाओ। समझदार हो जाने पर तुम्हें ब्याज सहित तीन करोड़ रुपये मिल जावें और तुम आराम में रह सको। तुम्हारे पिताजी ने यह सब तुम्हारे हित में ही किया है। अतः उत्तेजना में समय बर्बाद मत करो। आगे की सोचो।"

इस प्रकार सम्पत्ति सम्बन्धी सच्ची जानकारी और उस पर पूरा विश्वास जागृत हो जाने पर उस रिक्शेवाले युवक का मानस एकदम बदल जाता है, दरिद्रता के साथ का एकत्व टूट जाता है एवं 'मैं करोड़पति हूँ' ऐसा गौरव का भाव जागृत हो जाता है, आजीविका की चिन्ता न मालूम कहाँ चली जाती है, चेहरे पर सम्पन्नता का भाव स्पष्ट झलकने लगता है।

इसी प्रकार शास्त्रों के पठन, प्रवचनों के श्रवण और अनेक युक्तियों के अवलम्बन से ज्ञान में बात स्पष्ट हो जाने पर भी अज्ञानीजनों को इस प्रकार का श्रद्धान उदित नहीं होता कि ज्ञान का घन-पिण्ड, आनन्द का रसकन्द, शक्तियों का संग्रहालय, अनन्त गुणों का गोदाम भगवान आत्मा मैं स्वयं ही हूँ। यही कारण है कि श्रद्धान के अभाव में उक्त ज्ञान का कोई लाभ प्राप्त नहीं होता।

काललब्धि आने पर किसी आसन्नभव्य जीव को परमभाग्योदय से किसी अत्मानुभवी ज्ञानी धर्मात्मा का सहज समागम प्राप्त होता है और वह ज्ञानी धर्मात्मा उसे अत्यन्त वात्सल्यभाव से समझाता है कि हे आत्मन् ! तू स्वयं भगवान है, तू अपनी शक्तियों को पहचान, पर्याय की पामरता का विचार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मत कर, स्वभाव के सामर्थ्य को देख, सम्पूर्ण जगत पर से दृष्टि हटा और स्वयं में ही समा जा, उपयोग को यहाँ-वहाँ न भटका, अन्तर् में जा, तुझे निज-परमात्मा के दर्शन होंगे।

ज्ञानी गुरु की करुणा-विगलित वाणी सुनकर वह निकट भव्य जीव कहता है—

"प्रभो ! यह आप क्या कह रहे हैं, मैं भगवान कैसे हो सकता हूँ ? मैंने तो जिनागम में बताये भगवान बनने के उपाय का अनुसरण आज तक किया ही नहीं है। न जप किया, न तप किया, न व्रत पाले और न स्वयं को जाना-पहचाना—ऐसी अज्ञानी-असंयत दशा में रहते हुए मैं भगवान कैसे हो सकता हूँ ?"

अत्यन्त स्नेहपूर्वक समझाते हुए ज्ञानी धर्मात्मा कहते हैं—

"भाई, ये बनने वाले भगवान की बात नहीं है, यह तो बने-बनाये भगवान की बात है। स्वभाव की अपेक्षा तुझे भगवान बनना नहीं है, अपितु स्वभाव से तो तू बना-बनाया भगवान ही है। ऐसा जानना-मानना और अपने में ही जम जाना, रम जाना पर्याय में भगवान बनने का उपाय है। तू एक बार सच्चे दिल से अन्तर् की गहराई से इस बात को स्वीकार तो कर, अन्तर् की स्वीकृति आते ही तेरी दृष्टि पर-पदार्थों से हटकर सहज ही स्वभाव-सन्मुख होगी, ज्ञान भी अन्तरोन्मुख होगा और तू अन्तर् में समा जायगा, लीन हो जायगा, समाधिस्थ हो जायगा। ऐसा होने पर तेरे अन्तर् में अतीन्द्रिय आनन्द का ऐसा दरिया उमड़ेगा कि तू निहाल हो जावेगा, कृतकृत्य हो जावेगा। एक बार ऐसा स्वीकार करके तो देख !"

"यदि ऐसी बात है तो आज तक किसी ने क्यों नहीं बताया ?"

"जाने भी दे, इस बात को, आगे की सोच।"

"क्यों जाने दें ? इस बात को जाने बिना हम अत्यन्त दुःख उठाते रहे, स्वयं भगवान होकर भी भोगों के भिखारी बने रहे, और किसी ने बताया तक नहीं।"

"अरे भाई, जगत को पता हो तो बताये, और ज्ञानी तो बताते ही रहते हैं, पर कौन सुनता है उनकी, काललब्धि आये बिना किसी का ध्यान ही नहीं जाता इस ओर। सुन भी लेते हैं तो इस कान से सुनकर उस कान से बाहर निकाल देते हैं, ध्यान नहीं देते। समय से पूर्व बताने से किसी को कोई लाभ भी नहीं होता। अतः अब जाने भी दो पुरानी बातों को, आगे की सोचो। स्वयं के परमात्मस्वरूप को पहचानो, स्वयं के परमात्मस्वरूप को जानो और स्वयं में समा जावो। सुखी होने का एकमात्र यही उपाय है।

कहते-कहते गुरु स्वयं में समा जाते हैं और भव्यात्मा भी स्वयं में समा जाता है। जब उपयोग बाहर आता है तो उसके चेहरे पर अपूर्व शान्ति होती है, संसार की थकान पूर्णतः उतर चुकी होती है, पर्याय की पामरता का कोई चिन्ह चेहरे पर नहीं होता, स्वभाव की सामर्थ्य का गौरव अवश्य झलकता है।

आत्मज्ञान, श्रद्धान एवं आंशिक लीनता से आरम्भ मुक्ति के मार्ग पर आरूढ़ वह भव्यात्मा चक्रवर्ती की सम्पदा और इन्द्रों जैसे भोगों को भी तुच्छ समझने लगता है। कहा भी है—

"चक्रवर्ती की सम्पदा अरु इन्द्र सारिखे भोग।
कागबीट सम गिनत हैं सम्यग्दृष्टि लोग॥"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पिता के मित्र रिक्शेवाले नवयुवक से यह बात रिक्शा स्टेण्ड पर ही कह रहे थे। उनकी यह बात रिक्शे पर बैठे-बैठे हो ही रही थी। इतने में एक सवारी ने आवाज दी—

"ऐ रिक्शेवाले ! स्टेशन चलेगा ?"

उसने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया—"नहीं।"

"क्यों ? चलो न भाई, जरा जल्दी जाना है, दो रुपये की जगह पाँच रुपये लेना, पर चलो, जल्दी चलो।"

"नहीं, नहीं जाना, एक बार कह दिया न !"

"कह दिया पर····"

उसकी बात जाने दो, अब मैं आपसे ही पूछता हूँ कि क्या वह अब भी सवारी ले जायगा ? यदि ले जायेगा तो कितने में ? दस रुपये में, बीस रुपये में·····?

क्या कहा, कितने ही रुपये दो, पर अब वह रिक्शा नहीं चलायेगा।

"क्यों ?"

"क्योंकि अब वह करोड़पति हो गया है।"

"अरे भाई, अभी तो मात्र पता ही चला है, अभी रुपये हाथ में कहाँ आये हैं ?"

"कुछ भी हो, अब उससे रिक्शा नहीं चलेगा, क्योंकि करोड़पति रिक्शा नहीं चलाया करते !"

इसी प्रकार जब किसी व्यक्ति को आत्मानुभवपूर्वक सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रकट हो जाता है, तब उसके आचरण में भी अन्तर आ ही जाता है। यह बात अलग है कि वह तत्काल पूर्ण संयमी या देश-संयमी नहीं हो जाता, फिर भी उसके जीवन में अन्याय, अभक्ष्य एवं मिथ्यात्वपोषक क्रियाएँ नहीं रहती हैं। उसका जीवन शुद्ध सात्विक हो जाता है, उससे हीन काम नहीं होते।

वह युवक सवारी लेकर स्टेशन तो नहीं जावेगा, पर उस सेठ के घर रिक्शा वापिस देने और किराया देने तो जावेगा ही, जिसका रिक्शा वह किराये पर लाया था। प्रतिदिन शाम को रिक्शा और किराये के दस रुपये दे आने पर ही उसे अगले दिन रिक्शा किराये पर मिलता था। यदि कभी रिक्शा और किराया देने न जा पावे तो सेठ घर पर आ धमकता था, मुहल्लेवालों के सामने उसकी इज्जत उतार देता था।

आज वह सेठ के घर रिक्शा देने भी न जावेगा। उसे वहीं ऐसा ही छोड़कर चल देगा। तब फिर क्या वह सेठ उसके घर जायेगा ?

हाँ जायगा, अवश्य जायगा, पर रिक्शा लेने नहीं, रुपये लेने नहीं, अपनी लड़की का रिश्ता लेकर जायेगा, क्योंकि यह पता चल जाने पर कि इसके करोड़ों रुपये बैंक में जमा हैं, कौन अपनी कन्या देकर कृतार्थ न होना चाहेगा।

इसी प्रकार किसी व्यक्ति को आत्मानुभव होता है तो उसके अन्तर् की हीन भावना समाप्त हो ही जाती है, पर सातिशय पुण्य का बन्ध होने से लोक में भी उसकी प्रतिष्ठा बढ़ जाती है, लोक भी उसके सद्व्यवहार से प्रभावित होता है। ऐसा सहज ही निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है।

ज्ञात हो जाने पर भी जिस प्रकार कोई असभ्य व्यक्ति उस रिक्शेवाले से रिक्शेवालों जैसा व्यवहार भी कदाचित् कर सकता है, उसी प्रकार कुछ अज्ञानीजन उन ज्ञानी धर्मात्माओं से भी कदाचित् असद्व्यवहार कर सकते हैं, करते भी देखे जाते हैं, पर यह बहुत कम होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यद्यपि अभी वह वही मैला-कुचैला फटा कुर्ता पहने है, मकान भी टूटा-फूटा ही है, क्योंकि ये सब तो तब बदलेंगे, जब रुपये हाथ में आ जावेंगे। कपड़े और मकान श्रद्धा-ज्ञान से नहीं बदल जाते, उनके लिए तो पैसे चाहिए, पैसे, तथापि उसके चित्त में आप कहीं भी दरिद्रता की हीन भावना का नामोनिशान भी नहीं पायेंगे।

उसी प्रकार जीवन तो सम्यक्चारित्र होने पर ही बदलेगा, अभी तो असंयमरूप व्यवहार ही ज्ञानी-धर्मात्मा के देखा जाता है, घर उनके चित्त में रंचमात्र भी हीन भावना नहीं रहती, ये स्वयं को भगवान ही अनुभव करते हैं।

जिस प्रकार उस युवक के श्रद्धा और ज्ञान में तो यह बात एक क्षण में आ गई कि मैं करोड़पति हूँ, पर करोड़पतियों जैसे रहन-सहन में अभी वर्षों लग सकते हैं। पैसा हाथ में आ जाय, तब मकान बनना आरम्भ हो, उसमें भी समय तो लगेगा ही। उस युवक को अपना जीवन-स्तर उठाने की जल्दी तो है, पर अधीरता नहीं, क्योंकि जब पता चल गया है तो रुपये भी अब मिलेंगे ही, आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों, बरसों लगने वाले नहीं हैं।

उसी प्रकार श्रद्धा और ज्ञान तो क्षणभर में परिवर्तित हो जाते हैं, पर जीवन में संयम आने में समय लग सकता है। संयम धारण करने की जल्दी तो प्रत्येक ज्ञानी-धर्मात्मा को रहती ही है, पर अधीरता नहीं होती, क्योंकि जब सम्यग्दर्शन-ज्ञान और संयम की रुचि (अंश) जग गई है तो इसी भव में, इस भव में नहीं तो अगले भव में, उसमें नहीं तो उससे अगले भव में, संयम भी आयेगा ही, अनन्तकाल यों ही जाने वाला नहीं है।

अतः हम सभी का यह परम पावन कर्तव्य है कि हम सब स्वयं को सही रूप में जानें, सही रूप में पहचानें, इस बात का गहराई से अनुभव करें कि स्वभाव से तो हम सभी सदा से ही भगवान ही हैं—इसमें शंका-आशंका के लिए कहीं कोई स्थान नहीं है। रही बात पर्याय की पामरता की, सो जब हम अपने परमात्मस्वरूप का सम्यग्ज्ञान कर उसी में अपनापन स्थापित करेंगे, अपने ज्ञानोपयोग (प्रगटज्ञान) को भी सम्पूर्णतः उसी में लगा देंगे, स्थापित कर देंगे और उसी में लीन हो जावेंगे, जम जावेंगे, रम जावेंगे, समा जावेंगे, समाधिस्थ हो जावेंगे तो पर्याय में भी परमात्मा (अरहंतसिद्ध) बनते देर न लगेगी।

अरे भाई ! जैनदर्शन के इस अद्भुत परमसत्य को एक बार अन्तर् की गहराई से स्वीकार तो करो कि स्वभाव से हम सभी भगवान ही हैं। पर और पर्याय से अपनापन तोड़कर एक बार द्रव्यस्वभाव में अपनापन स्थापित तो करो. फिर देखना अन्तर् में कैसी क्रान्ति होती है, कैसी अद्भुत और अपूर्व शान्ति उपलब्ध होती है, अतीन्द्रिय आनन्द का कैसा झरना झरता है।

इस अद्भुत सत्य का आनन्द मात्र बातों से आने वाला नहीं है, अन्तर् में इस परमसत्य के साक्षात्कार से ही अतीन्द्रिय आनन्द का दरिया उमड़ेगा। उमड़ेगा, अवश्य उमड़ेगा, एक बार सच्चे हृदय से सम्पूर्णतः समर्पित होकर निज-भगवान आत्मा की आराधना तो करो, फिर देखना क्या होता है ?

बातों से इससे अधिक कुछ नहीं कहा जा सकता है। अतः यह मंगलभावना भाते हुए विराम लेता हूँ कि सभी आत्माएँ स्वयं के परमात्मस्वरूप को जानकर, पहचानकर स्वयं में ही जमकर, रमकर अनन्त सुख-शान्ति को शीघ्र ही प्राप्त करें। ●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org